पूनम कुमारी की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना के विविध आयाम

डॉ. प्रेम कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, जयपुर
ईमेल: dr.premkumar@uot.edu.in
दूरभाष: 9990418965

सारांश

समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना का स्वर केवल समाज की वास्तविक परिस्थितियों का वर्णन करने तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक विषमताओं, अन्याय और मानवीय मूल्यों के ह्रास के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। पूनम कुमारी की कविताएँ इस सामाजिक सरोकार से संपन्न काव्यधारा का महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी रचनाओं में सत्ता-संरचनाओं, विस्थापन की पीड़ा, पारिवारिक संबंधों की जटिलताओं, स्त्री-अनुभवों, हिंसा तथा प्रतिरोध जैसे अनेक सामाजिक पक्षों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इन विविध आयामों के माध्यम से उनकी कविता सामाजिक चेतना की व्यापक और बहुआयामी अभिव्यक्ति का निर्माण करती है। यही कारण है कि उनका काव्य सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं और परिवर्तनकारी प्रतिरोध को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करता है। उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री की आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और संघर्षशीलता से जुड़ा हुआ है। कवयित्री स्त्री को केवल पीड़ा और दमन की शिकार के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे साहस, संकल्प और प्रतिरोध की सशक्त प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार उनकी दृष्टि स्त्री-विमर्श को मात्र करुणा या सहानुभूति के दायरे से आगे बढ़ाकर आत्मविश्वास, स्वाभिमान और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में स्थापित करती है।

बीज शब्द

स्त्री चेतना, सामाजिक चेतना, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री हिंसा, प्रतिरोध की कविता, आत्मबल, आत्मसम्मान, नैतिक पतन, मानवीय संवेदना, सामाजिक यथार्थ

आलेख विस्तार

युवा कवयित्री पूनम कुमारी की कविताएँ समकालीन समाज की जटिल, संवेदनशील और अनेक बार त्रासद वास्तविकताओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। उनका काव्य व्यक्तिगत अनुभूतियों से आरम्भ होकर व्यापक सामाजिक सरोकारों तक विस्तृत होता है। वे समाज को केवल घटनाओं और परिस्थितियों के बाहरी स्वरूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसके भीतर सक्रिय भय, असमानता, संवेदनहीनता तथा संघर्ष की प्रक्रियाओं को मानवीय दृष्टि से समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास करती हैं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ सरल भाषा में रची गई होने के बावजूद गहरे सामाजिक अर्थों और वैचारिक संकेतों से समृद्ध दिखाई देती हैं। उनकी अनेक कविताओं में भय, असुरक्षा और सत्ता के अंतर्संबंधों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इन रचनाओं में सत्ता ऐसी संरचना के रूप में उभरती है जो व्यक्ति की स्वाभाविक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति को सीमित कर देती है। कवयित्री द्वारा प्रयुक्त 'अँधेरा' मात्र प्राकृतिक घटना का संकेत नहीं है, बल्कि वह सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का रूपक बन जाता है। यह वह अवस्था है जब सामान्य नागरिक भय और असुरक्षा के कारण अपने सीमित दायरे में सिमटने लगता है, सार्वजनिक सहभागिता कम हो जाती है और सामूहिक चेतना धीरे-धीरे निष्क्रिय होने लगती है। ऐसा मौन वातावरण सत्ता के लिए सबसे अधिक अनुकूल सिद्ध होता है। कविता में प्रयुक्त प्रतीक यह स्पष्ट करते हैं कि जब समाज भयवश केवल आत्म-सुरक्षा तक सीमित हो जाता है, तब वे शक्तियाँ सक्रिय होने लगती हैं जो पारदर्शिता के बजाय गोपनीयता और नियंत्रण की संस्कृति पर आधारित होती हैं। ये शक्तियाँ व्यवस्था का हिस्सा होते हुए भी आमजन की पहुँच से दूर रहती हैं तथा उनका उद्देश्य सामाजिक हितों की रक्षा करने के बजाय लोगों के जीवन को नियंत्रित करना होता है। इस संदर्भ में कविता का मूल संदेश यह है कि सत्ता तब सबसे अधिक प्रभावशाली हो जाती है जब नागरिक स्वयं को अकेला, असहाय और निरुपाय महसूस करने लगते हैं। इसी भावभूमि को रेखांकित करते हुए कवयित्री कहती हैं –

"अँधेरा होते ही
यह दुनिया
हो जाती है क़ैद
अपने-अपने घरों में
तब
निकलते हैं

काले-काले चमगादड़
अपने-अपने घरों से"[1]

यह रचना सत्ता की उस जटिल भाषा पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है जो सामान्य जनता की समझ और भागीदारी से दूर होती है। यह भाषा कानूनों, नीतियों, भय और चुप्पी के माध्यम से संचालित होती है। आम व्यक्ति भले ही इसके तंत्र को पूरी तरह न समझ सके, किंतु उसका जीवन उसी के अनुसार नियंत्रित होता रहता है। परिणामस्वरूप संवाद की प्रक्रिया कमजोर पड़ने लगती है और लोकतांत्रिक चेतना धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है। कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'उजाले' का प्रतीकात्मक प्रयोग है। यहाँ उजाला न्याय, सत्य, नैतिकता और मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि उसकी उपस्थिति दिखाई देती है, पर वह स्थायी और व्यापक रूप ग्रहण नहीं कर पाता। इससे यह संकेत मिलता है कि समाज में सत्य और प्रतिरोध की संभावनाएँ अभी समाप्त नहीं हुई हैं, किंतु वे इतनी सीमित हैं कि व्यापक अँधेरे को निर्णायक चुनौती देने में सक्षम नहीं हो पातीं। यही स्थिति कवयित्री के लिए चिंता और चेतावनी दोनों का विषय बनती है। इस भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

"इस
अंधकारभरी दुनिया का
मुआयना करने को
रहती है सीमित
उनकी भाषा
उन्हीं तक
जैसे सीमित रहती है
धूप
दोपहर तक"[2]

इस प्रकार यह कविता एक प्रतीकात्मक सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में सामने आती है, जो पाठक को यह सोचने के लिए विवश करती है कि यदि समाज ने अपनी सामूहिक चेतना और प्रतिरोध को पुनः सक्रिय नहीं किया, तो अँधेरा केवल रात तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि जीवन की स्थायी अवस्था बन जाएगा। उनकी एक अन्य लोकप्रिय कविता है- 'इस किराये के मकान में' जिसमें किराए का मकान केवल रहने का स्थान नहीं है, बल्कि वह सामाजिक स्थिति है जहाँ मनुष्य स्थायित्व, अपनत्व और जड़ों से निरंतर वंचित होता चला जाता है। प्रस्तुत कविता आधुनिक शहरी जीवन की उस गहरी और अनकही पीड़ा को स्वर देती है, जिसे विस्थापन की अनुभूति कहा जा सकता है। यह कविता एक व्यक्ति के अनुभव

से आगे बढ़कर सामूहिक शहरी जीवन का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ लोग आते-जाते रहते हैं और उनके पीछे छूट जाती हैं केवल स्मृतियाँ। कविता में स्थान की स्मृति अत्यंत प्रभावशाली रूप में उभरती है। नए किरायेदार का मकान में प्रवेश करते ही 'अजीब सी गंध' का फैलना, यह संकेत देता है कि कोई भी स्थान कभी पूरी तरह रिक्त नहीं होता। उसमें पहले रहने वालों की अनुभूतियाँ, सुख-दुःख और जीवन-संघर्ष अदृश्य रूप में बसे रहते हैं। यह गंध स्मृति का प्रतीक है। ऐसी स्मृति जिसे न देखा जा सकता है, न पूरी तरह भुलाया जा सकता है। इस प्रकार कविता यह दिखाती है कि शहरी समाज में बाहर से आए लोग कमरा बदलते रहते हैं, पर उनके अनुभव दीवारों पर दर्ज हो जाते हैं। यह रचना समय के प्रवाह और जीवन की अस्थिरता को भी रेखांकित करती है। 'आते-जाते बसंत' जीवन के बदलते चरणों और क्षणिक खुशियों के प्रतीक हैं। किराये के मकान में ऋतुएँ तो आती-जाती रहती हैं, पर रहने वाला व्यक्ति कभी यह नहीं जान पाता कि वह अगला बसंत उसी खिड़की से देख पाएगा या नहीं। यह अनिश्चितता आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी बनकर उभरती है-

"उसने भी इसी खिड़की से देखे होंगे
कितने आते जाते बसंत
इन दीवारों पर
उसने भी शायद लगाए होंगे पोस्टर
इसी मकान में वह
कभी ख़ुश, तो कभी दुःखी रहा होगा
इसी मकान में बैठे-बैठे उसने लिखी होगी
अपनों को कुछ चिट्ठियाँ
इस मकान से जाते समय
घेरी होगी उसको
कुछ प्यारी
कुछ दिल को नोचती यादें"[3]

कविता में भावनात्मक स्तर पर भी विस्थापन की पीड़ा स्पष्ट है। मकान के भीतर जीए गए सुख-दुःख, लगाए गए पोस्टर, लिखी गई चिट्ठियाँ ये सब उस मनुष्य के निजी संसार के संकेत हैं, जो समाज की मजबूरियों के कारण अस्थायी बन जाता है। जब वह मकान छोड़ता है, तो उसके साथ केवल सामान नहीं जाता, बल्कि 'कुछ प्यारी और कुछ दिल को नोचती यादें' भी चलती हैं। यह पंक्ति बताती है कि विस्थापन केवल स्थान बदलना नहीं,

बल्कि भावनाओं का भी बिखर जाना है। समग्रतः यह कविता आधुनिक शहरी समाज की उस संरचना पर प्रश्न उठाती है, जहाँ मनुष्य घर में रहता तो है, पर घर उसका नहीं होता। किराये का मकान यहाँ मध्यवर्गीय जीवन, आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक अनिश्चितता का प्रतीक बन जाता है। कविता के अंत में उठाया गया प्रश्न 'कैसी अनुभूति है यह' पाठक को भी आत्मचिंतन के लिए बाध्य करता है। यह अनुभूति अकेलेपन, अस्थायित्व और स्मृतियों के बोझ से बनी है, जो आज के मनुष्य की सामूहिक सामाजिक सच्चाई बन चुकी है। इस प्रकार यह कविता विस्थापन की सामाजिक अनुभूति को अत्यंत संवेदनशील और मानवीय ढंग से प्रस्तुत करती है, जहाँ एक साधारण-सा किराये का मकान पूरे समाज के अस्थिर जीवन का प्रतीक बन जाता है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में स्त्री चेतना केवल अधिकारों की माँग तक सीमित नहीं रही है, बल्कि वह सामाजिक संरचना, मानवीय संबंधों और नैतिक मूल्यों की गहरी पड़ताल का माध्यम बन चुकी है। पूनम कुमारी की कविताएँ इसी विस्तृत स्त्री चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री जीवन के अनुभव, संघर्ष, पीड़ा और प्रतिरोध केवल निजी संवेदना नहीं रह जाते, बल्कि व्यापक सामाजिक यथार्थ से जुड़कर एक वैचारिक हस्तक्षेप का रूप ले लेते हैं। उनकी कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो कि विवाहित स्त्री की उस गहरी, मौन और संवेदनशील पीड़ा को स्वर देती है, जो विवाह के बाद पिता के घर से भौतिक और भावनात्मक दूरी के रूप में उसके जीवन में स्थायी हो जाती है। भारतीय सामाजिक संरचना में विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं, बल्कि स्त्री के लिए घर, पहचान और दायित्वों का स्थानांतरण भी है। इस व्यवस्था में बेटी का पिता से बिछोह एक स्वीकृत परंपरा है, किंतु उसकी भावनात्मक कीमत पर समाज प्रायः मौन रहता है। उनकी 'पिताजी' नामक कविता इसी मौन को तोड़ती है। कविता में किसी 'बेबस बूढे व्यक्ति' को देखकर पिता की स्मृति का जागृत होना केवल व्यक्तिगत भाव नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक यथार्थ की ओर संकेत करता है जहाँ वृद्धावस्था असहायता और उपेक्षा से जुड़ जाती है। विवाहित स्त्री जब किसी वृद्ध को देखती है, तो उसमें उसे अपने पिता का संघर्ष, उनका श्रम और उनका जीवन दिखाई देने लगता है। यह स्मृति करुणा से उपजी है, पर इसके भीतर अपराधबोध और विवशता भी निहित है। वह चाहकर भी पिता के पास नहीं रह सकती, क्योंकि समाज ने उसके लिए 'घर' की परिभाषा बदल दी है। कविता यह भी दर्शाती है कि पिता से जुड़ी स्मृति केवल आँखों या कानों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि पूरे अस्तित्व में उतर आती है। आँखों का नम होना,

कानों का पिता की आवाज़ सुनना चाहना और धड़कनों का उनसे कुछ कहना चाहना ये सभी संकेत करते हैं कि बेटी के लिए पिता केवल संबंध नहीं, बल्कि सुरक्षा, विश्वास और आत्मीयता का केंद्र होते हैं। विवाह के बाद यह आत्मीयता स्मृति में बदल जाती है, किंतु उसकी तीव्रता कम नहीं होती। वे कहती हैं-

"अक़्सर पिताजी की याद
आ जाती है
जब देखती हूँ मैं
किसी बेबस बूढ़े व्यक्ति को
आँखें होने लगती हैं नम
कान होने लगते हैं बैचेन
सुनना चाहते हैं, ये कान
आवाज़, पिता की
देखना चाहती हैं
ये आँखें
पिता का चेहरा
पिता से
कहना चाहती हैं
ये धड़कनें
कि मुझे तुम्हारी
बहुत . . . आती है"[4]

यह रचना वृद्धावस्था के सामाजिक यथार्थ पर भी गंभीर प्रश्न उठाती है। पिता, जो कभी परिवार का आधार थे, वही वृद्धावस्था में 'बेबस' दिखाई देने लगते हैं। कविता संकेत देती है कि आधुनिक समाज में बुजुर्गों के प्रति संवेदना कम होती जा रही है और पारिवारिक ढाँचा भावनात्मक दूरी की ओर बढ़ रहा है। विवाहित बेटी की व्यथा इस दूरी को और गहरा कर देती है, क्योंकि वह चाहकर भी अपनी भूमिका पूरी तरह निभा नहीं पाती। समग्रतः यह कविता निजी स्मृति के माध्यम से सामाजिक संरचना की आलोचना करती है। यह बताती है कि विवाह के बाद बेटी का पिता से अलग होना केवल रीति नहीं, बल्कि एक भावनात्मक विछोह है, जिसे समाज सामान्य मानकर अनदेखा कर देता है। कविता का अंत जहाँ बेटी यह कहना चाहती है कि उसे पिता की 'बहुत... याद आती है' अधूरा वाक्य नहीं, बल्कि उस अनकही पीड़ा का प्रतीक है जिसे शब्दों में पूरी तरह बाँधा नहीं जा सकता। इस प्रकार यह

कविता पारिवारिक स्मृति, स्त्री की विवशता और वृद्धावस्था के सामाजिक यथार्थ को एक साथ जोड़ते हुए, पाठक को मानवीय संबंधों पर पुनर्विचार करने के लिए विवश करती है।

स्त्री चेतना का एक अधिक मुखर और तीखा रूप पूनम कुमारी की उन कविताओं में दिखाई देता है, जहाँ स्त्री पर निरंतर हो रही हिंसा को विषय बनाया गया है। यहाँ स्त्री केवल पीड़िता नहीं है, बल्कि मानवता के पतन का सबसे बड़ा साक्ष्य बन जाती है। कवयित्री यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री का शोषण किसी एक व्यक्ति की विकृति नहीं, बल्कि पूरी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की विफलता है। सत्ता, राजनीति और सामाजिक पाखंड पर उठाए गए प्रश्न उनकी कविता को प्रतिरोध की आवाज़ प्रदान करते हैं। पूनम कुमारी की कविताएँ समकालीन समाज की उस भयावह सच्चाई को उजागर करती हैं, जहाँ स्त्री पर हिंसा एक अपवाद नहीं, बल्कि लगभग निरंतर घटित होने वाली सामाजिक घटना बन चुकी है। कवयित्री यहाँ किसी एक घटना या व्यक्ति की बात नहीं करतीं, बल्कि उस व्यवस्था पर प्रश्न उठाती हैं, जिसमें स्त्री का शोषण सामान्यीकृत हो गया है और मानवता का नैतिक आधार लगातार क्षीण होता जा रहा है। उनकी कविताओं का स्वर आक्रोशपूर्ण, प्रश्नात्मक और प्रतिरोध से भरा हुआ है। अपनी 'शिकार स्त्री' नामक कविता में वे प्रश्न उठती हैं कि स्त्री के 'हर एक मिनट शिकार' होने की बात सामान्य नहीं है। आज के दौर में स्त्रियों पर की जाने वाली हिंसा में बढ़ोत्तरी होती जा रही है, जबकि यह हिंसा केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी घटित हो रही है। स्त्री का 'जिस्म तार-तार होना' केवल देह की क्षति नहीं, बल्कि उसकी अस्मिता, गरिमा और अधिकारों के विघटन का प्रतीक है। इसी के साथ कवयित्री यह भी रेखांकित करती हैं कि स्त्री पर हिंसा के समानांतर मानवता भी समाप्त होती जा रही है। यहाँ स्त्री और मानवता को एक-दूसरे से जोड़कर देखा गया है अर्थात् जहाँ स्त्री सुरक्षित नहीं, वहाँ समाज सभ्य होने का दावा नहीं कर सकता। कविता का सबसे सशक्त पक्ष उसका प्रश्नात्मक स्वर है। 'कर रहा है कौन यह नंगा नाच?' यह प्रश्न किसी एक अपराधी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरे समाज को कठघरे में खड़ा कर देता है। वे पूरे आक्रोश में भरकर कह उठती हैं-

"हर एक मिनट
हो रही है शिकार स्त्री
हो रहा है तार-तार
उसका जिस्म
ख़त्म हो रही है मानवता
ख़त्म हो रही है स्त्री
कर रहा है कौन
यह नंगा नाच"[5]

इसी कविता में आगे वे दरिंदा और जानवर जैसे शब्दों का प्रयोग कर यह संकेत देती हैं कि हिंसा करने वाला व्यक्ति अपने मानवीय मूल्यों को त्याग चुका है किंतु कविता यहीं नहीं रुकती वह राजनीति की 'चादर ओढ़े' लोगों की ओर भी संकेत करती है। यह पंक्ति सत्ता-संरक्षित अपराधों, राजनीतिक संरक्षण और नैतिक पाखंड पर तीखा प्रहार करती है, जहाँ अपराधी व्यवस्था के भीतर छिपकर स्वयं को सुरक्षित कर लेते हैं। कवयित्री सभी को कठघरे खड़ा कर प्रश्न करती है-

"दरिंदा
या, कोई जानवर
या, वह
जिसने ओढ़ी है चादर
राजनीति की
या, वह
जो रच रहा है
मानव न होने पर भी
मानव होने का ढोंग"

कवयित्री का आक्रोश उस 'ढोंग' के विरुद्ध है, जिसमें मानव न होते हुए भी मानव होने का अभिनय किया जाता है। यह आधुनिक समाज का सबसे बड़ा नैतिक संकट है, जहाँ संवेदना, करुणा और जिम्मेदारी का स्थान दिखावे और स्वार्थ ने ले लिया है। कविता यह स्पष्ट करती है कि स्त्री पर हिंसा केवल अपराध नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के पतन का प्रमाण है। समग्रतः यह कविता स्त्री-विमर्श को केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं रखती, बल्कि प्रतिरोध की चेतना जगाती है। यह पाठक को झकझोरती है, प्रश्न करने के लिए विवश करती है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि यदि समाज इस हिंसा के विरुद्ध खड़ा नहीं

हुआ, तो मानवता का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा। इस प्रकार पूनम कुमारी की यह कविता स्त्री पर हिंसा और नैतिक पतन के विरुद्ध एक सशक्त सामाजिक वक्तव्य और प्रतिरोध का स्वर बनकर सामने आती है।

पूनम कुमारी के स्त्री चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका आत्मविश्वासी स्वर है। उनकी कविता में स्त्री को 'शीशा' समझकर तोड़ने की मानसिकता पर करारा प्रहार किया गया है। जब स्त्री टूटती नहीं, तब हिंसा करने वाला स्वयं बिखर जाता है। यह दृष्टि स्त्री को कमजोर, सहनशील और मौन इकाई के रूप में देखने वाली पारंपरिक सोच को चुनौती देती है। यहाँ स्त्री चेतना आत्मबल, आत्मसम्मान और संघर्ष की चेतना बन जाती है। पूनम कुमारी की यह कविता स्त्री-विमर्श को एक नए और सशक्त धरातल पर स्थापित करती है। यहाँ स्त्री केवल शोषण की शिकार या सहानुभूति की पात्र नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी चेतन इकाई के रूप में उपस्थित है, जो हिंसा, अपमान और दमन के विरुद्ध अपनी आंतरिक शक्ति से प्रतिरोध करती है। कविता प्रतीकों के माध्यम से पितृसत्तात्मक मानसिकता और स्त्री के आत्मबल के बीच के संघर्ष को अत्यंत प्रभावी ढंग से सामने लाती है। कविता में 'शीशा' वह छवि है, जिसके माध्यम से समाज स्त्री को देखने का आदी रहा है, कमज़ोर, नाज़ुक और आसानी से टूट जाने वाली। इस धारणा के कारण उस पर निरंतर 'पत्थर' फेंके जाते हैं, अर्थात् अपमान, हिंसा, उपेक्षा और अत्याचार किए जाते हैं। यह पत्थर केवल भौतिक नहीं हैं, बल्कि मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर किए गए आघातों के प्रतीक हैं। पितृसत्तात्मक समाज यह मानकर चलता है कि स्त्री इन आघातों से बिखर जाएगी और चुपचाप सब सह लेगी। इस संदर्भ में वे लिखती हैं-

"उसने सोचा था
मैं टूटकर
बिखर जाऊँगी
शीशे की तरह
इसलिए मारता रहा
वह पत्थर
शीशा समझकर
पर, देखा जब उसने
मैं बिखरी नहीं
पत्थरों से उसके

शीशे की तरह
तो, ख़ुद ही बिखर गया
वो पत्थर के
टुकड़ों की तरह"[6]

जब स्त्री टूटती नहीं, बल्कि अपने भीतर की दृढ़ता और आत्मसम्मान के साथ खड़ी रहती है, तब यह हिंसक मानसिकता स्वयं विफल हो जाती है। हिंसा करने वाला, जिसने स्वयं को शक्तिशाली समझा था, अंततः अपने ही आक्रोश और असंवेदनशीलता के बोझ से बिखर जाता है। यहाँ कविता यह संकेत देती है कि वास्तविक शक्ति शारीरिक या सामाजिक प्रभुत्व में नहीं, बल्कि आत्मबल और चेतना में निहित होती है। इस कविता की सामाजिक चेतना इस तथ्य में निहित है कि वह स्त्री को परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत करती है। प्रतिरोध यहाँ केवल विरोध नहीं, बल्कि आत्मपहचान और आत्मसम्मान की पुनर्प्राप्ति है। स्त्री का न टूटना स्वयं में एक क्रांतिकारी कर्म बन जाता है, क्योंकि यह उस व्यवस्था को चुनौती देता है जो उसे कमजोर बनाए रखना चाहती है। समग्रतः यह कविता आशा और संघर्ष का संदेश देती है। यह बताती है कि जब स्त्री अपने भीतर की शक्ति को पहचान लेती है, तब पितृसत्तात्मक संरचनाएँ दरकने लगती हैं। स्त्री का आत्मबल केवल उसकी व्यक्तिगत मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला बन सकता है। इस प्रकार यह कविता स्त्री को पीड़ा की प्रतीक के बजाय प्रतिरोध, आत्मविश्वास और भविष्य की संभावना के रूप में स्थापित करती है।

निष्कर्ष

पूनम कुमारी की कविताएँ सामाजिक चेतना का बहुआयामी स्वर प्रस्तुत करती हैं। अँधेरा, सत्ता, विस्थापन, पारिवारिक स्मृति, स्त्री पर हिंसा और स्त्री का आत्मबल ये सभी पक्ष उनकी कविता में गहराई से जुड़े हुए हैं। उनकी रचनाएँ केवल यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि पाठक को सोचने, सवाल करने और संवेदनशील बनने के लिए प्रेरित करती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पूनम कुमारी की कविताएँ समकालीन समाज का सजीव दस्तावेज़ हैं, जिनमें मानवीय संवेदना, सामाजिक प्रतिरोध और परिवर्तन की आकांक्षा सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। समग्रतः पूनम कुमारी की कविताओं में सामाजिक चेतना बहुआयामी, गहन

और मानवीय रूप में अभिव्यक्त होती है। उनकी कविता समाज के अँधेरों को उजागर करने के साथ-साथ उजाले की संभावना भी रचती है। सत्ता के दमन से लेकर स्त्री के आत्मबल तक फैले ये विविध आयाम उनकी रचनाओं को समकालीन हिंदी कविता में एक महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में स्थापित करते हैं।

[1] कुमारी, पूनम(2022). पुरोहित का शाप. नई दिल्ली: न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन्स. पृ. 18
[2] कुमारी, पूनम. (2022). पुरोहित का शाप. नई दिल्ली: न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन्स. पृ. 18
[3] कुमारी, पूनम. नए पल्लव. (अंक 27, मार्च 2017). नई दिल्ली. पृ. 73
[4] कुमारी, पूनम. साहित्यकुंज.(अंक 237, सितंबर 2023). कनाडा
[5] कुमारी, पूनम. साहित्यकुंज.(अंक 237, सितंबर 2023). कनाडा
[6] कुमारी, पूनम. (2022). पुरोहित का शाप. नई दिल्ली: न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन्स. पृ. 55